समझौता

[कुछ बच्चे शोर मचा रहे हैं। खेल-कूद, दौड़-धूप, उछल-फाँद हो रही है। मसूद दाखिल होता है और बच्चों को डाँटता है।]

मसूद—क्या आफ़त मचा रखी है ? क्या क़यामत है, मालूम होता है कि हंगामा वर्पा है। बाहर जाकर खेलो।

बेगम—बस ये जिन्दगी भर खेलते ही रहेंगे। न पढ़ने के, न लिखने के, और लिखें पढ़ें तो क्या। कोई लिखाये-पढ़ाये तो लिखें-पढ़ें भी। तुमको तो जैसे कोई ख़याल ही नहीं है।

मसूद—आख़िर मैं किस-किस बात का ख़याल करूँ ? कहिये तो कचहरी की नौकरी छोड़कर आपके साहबजादों की मुल्लागीरी शुरू कर दूँ !

बेगम—हाँ और क्या ! जो लोग कचहरी में नौकर होते हैं उनके बच्चे भला कहीं पढ़ सकते हैं।

मसूद—अब तुमसे कौन बहस करे। बात कहकर आदमी ख़तावार हो जाता है। मैं तो यह कहने आया था कि सलीम का पर्चा आया है, वह उनकी बीवी आ रही हैं अभी।

बेगम—सलीम भी तो हैं तुम्हारी कचहरी में नौकर। और माशा अल्लाह हमसे ज्यादा बच्चे भी हैं। मगर सब बच्चे ढंग से पढ़ रहे हैं—बड़ा सातवें में है, उससे छोटा पाँचवें में, तीसरा बच्चा शायद चौथे में। चौथे को घर पर मास्टर पढ़ाता है। और यहाँ यह हाल है कि अभी तक किसी ने किताब को हाथ नहीं लगाया।

मसूद—अच्छा साहब अच्छा ! सलीम बड़े अच्छे हैं और मैं बहुत बुरा हूँ। मगर अब इस ज़िक्र को छोड़कर ज़रा ये फैली हुई चीजें समेट दो। वे लोग आते ही होंगे। उनका घर जाकर देखो तो हर वक़्त साफ़-सुथरा नज़र आता है।

बेगम—उनको हर वक़्त सफ़ाई की ही फ़िक्र रहती है। यह नहीं

कि तुम्हारी तरह कचहरी से आये तो मोजे एक तरफ़ उछाल दिये और जूता एक तरफ़। टोपी खूँटी पर टाँग दी तो शेरवानी क़ालिब पर डाल दी। किसी बात का ढंग ही नहीं है।

मसूद—यानी यह भी मेरा ही क़सूर है। बहुत अच्छा साहब, बहुत अच्छा। मैं ही ख़तावार सही। मगर मेहरबानी फ़रमाकर ज़रा इस वक्त मेरी ख़ताएँ न गिनवायें। बच्चों के कपड़े बदलवा दीजिये और ख़ुद भी अगर ज़हमत न हो तो मुँह-हाथ धो डालिये। आप देखती हैं कि सलीम के बच्चे कैसे साफ़-सुथरे रहते हैं। और उसकी बीवी को जब देखिये कंघी-चोटी से दुरुस्त नज़र आती है।

बेगम—वह क्यों न दुरुस्त रहेंगी! मियाँ भी तो ऐसा ख़्याल रखता है कि जब देखिये साबुन, तेल, क्रीम, स्नो और न जाने क्या-क्या ख़ाक-धूल लाता रहता है। तुमको भी कभी तौफ़ीक़ हुई? तीन दिन से रूखे बाल लिये फिर रही हूँ, मगर तुमको भी ख़याल आया कि लाओ कचहरी से लौटते में तेल ही ले चलें।

मसूद—मैं समझा कि तुमने तेल छोड़ ही दिया है, मैं तो मुद्दतों से इसी तरह देख रहा हूँ। अरमान रह गया कि कभी कंघी करते हुए तुमको भी देख लूँ।

बेगम—चलो हटो, अब चले हैं मुझे बनाने। अरमान रह गया! मैं कहती हूँ कि क्या दिन-रात बैठी हुई सूखे झोंटे नोचा करूँ?

मसूद—अच्छा अच्छा ख़ैर, मेरी ही ग़लती सही। मैं ही आपके सर के बालों तक का ज़िम्मेदार हूँ। मगर ख़ुदा के वास्ते इस वक़्त बहस में वक़्त न ग़ुज़ारो। बच्चों के कपड़े बदलवादो वर्ना सलीम और जमीला दोनों नाम रखेंगे। वाक़ई शर्म की बात है कि वह मुझसे कम तनख़्वाह पाता है मगर किस शान से रहता है।

बेगम—तुम कहो इसको शान! मैं तो इसको बनावट समझती हूँ

कि पेट काट-काटकर दिखाने का टीम-टाम दुरुस्त किया जाये। हमारे यहाँ माशाअल्लाह खाने का खर्च तो है।

मसूद—बस खर्च ही खर्च है वर्ना, खैर छोड़ो इस बहस को। बच्चों को बुलाओ ना। अरे किधर गये महमूद, मक्सूद, मशहूद।

बच्चों की आवाज़—जी, जी आया। अब्बा मियाँ।

मसूद—चलो इधर फ़ौरन। हाँ बेगम, अब उठकर ज़रा इनके हाथ-मुँह धुलाकर बाल-वाल ठीक कर दो। यहाँ की चीज़ें मैं समेटे देता हूँ। हटाओ इस पानदान को, यह क्या बुर्क़ा है? यह भी मेरा ही होगा। साड़ी इधर गई, यह एक मोज़ा किसका है। खैर होगा भी। तिलेदानी, गठरी, मैला पाजामा, चादर, तकिये काग़िलाफ़। यह किताब कौनसी है लाहौल वला क़ूवत! जन्तरी। गई तो देखो, तौबा है। [बच्चे आते हैं।]

बेगम—क्या शक्ल बनाई है तुम लोगों ने भी। कभी जो तुम आदमियों की सूरत रहो। क्यों रे पाजामा कहाँ फाड़ा? और यह महमूद सारा कुर्ता पान से रँगा गया है। नंगे सर, नंगे पैर मालूम होता है कि अच्छे-खासे भिखमंगे, मुए। बिल्कुल बाप को पड़े ही तुम लोग।

मसूद—कभी-कभी बच्चों को इसी क़लह से पास बिठाकर आईना भी देख लिया करो।

बेगम—क्या मैं झूठ कह रही हूँ, तुम खुद देख लो। वही बेढंगापन है कि नहीं। और यह मक्सूद तो हूबहू बस तुम्हारा ही नक़्शा है—एक पायचा ऊँचा और एक पायँचा नीचा, पैरों पर मनों गर्द जमी हुई, मुँह जैसे बिल्लियों ने चाटा हो। काहे को ऐसे लड़के होते होंगे किसी के? चलो तुम सब नल के नीचे।

मसूद—नल पर जा रही हो तो तुम भी लगे हाथों मुँह धोती आना। इतने मैं यहाँ सब ठीक कर रहा हूँ।

बेगम—तो नल पर मैं कब जा रही हूँ, वो खुद धोलेंगे हाथ-मुँह

कोई बच्चे हैं—आठ-आठ, नौ-नौ के लूँबड़ ! इनके हाथ-मुँह मैं धुलाऊँ ? कच्ची-कच्ची कौवा खाये, दूध-मलीदा तू भैया खाये। मुझे ये चोंचले नहीं आते ।

मसूद—मतलब यह था कि वह क़मबख़्त नल पर जाकर और भी आफ़त मचा देंगे, एक-दूसरे से लड़ेंगे और जिस्म की ख़ुश्क मिट्टी पर पानी छिड़ककर कीचड़ टपकाते हुए वापस आजायेंगे ।

बेगम—तो अब तुम ही जाओ, मेरे तो हाथ-पैर इस वक़्त सनसना रहे हैं, भेजा है कि मुआँ टपक रहा है। सर तक तो उठाया नहीं जाता ।

मसूद—तो यहाँ का यह आख़ोर कौन समेटेगा ? बैठने का तख़्त क्या है मालूम होता है कबाड़िये की दूकान है। अब तुम ही बताओ, यहाँ भला इस चूहेदान की क्या तुक है ? और यह अँगीठी की जाली यहाँ क्यों तशरीफ़ फ़रमा है ।

बेगम—तौबा है, बच्चे के घर में यही होता है। दिन भर तो कौवे-हफनी की तरह बच्चों के पीछे लगे-लगे करती रहती हूँ। वह न मानें तो आख़िर क्या करूँ ? तुम चलो यहाँ से, मैं सब समेटे देती हूँ। [बच्चे के गिरने की आवाज़ और साथ-ही-साथ रोना ।]

मसूद—लीजिये, देखा आपने ? मैंने कहा था कि नल पर जाकर ये लोग ख़ुदा जाने क्या करेंगे। साहबज़ादे सर से पैर तक कीचड़ में लतपत भूत बने खड़े हैं। [चीखकर] यह आख़िर हुआ क्या ?

महमूद—अब्बा मियाँ, मैं अलग खड़ा हूँ। मैं कुछ नहीं बोला ।

बेगम—तो उतार कमबख़्त यह भीगी हुई लादी ।

मसूद—हमारे घर की क़िस्मत में बेढंगापन लिखा है तो उसको कोई क्या करे ? औलाद भी है तो कमबख़्त ऐसी !

बेगम—मुझ ही को उठना पड़ेगा, चाहे कमबख़्त तबियत अच्छी हो या न हो। मगर बग़ैर उठे तो कोई काम ही नहीं हो सकता, आजिज़ हूँ इस निगोड़ी मारी ज़िन्दगी से ।

मसूद—अरे साहब तो मैं जा रहा हूँ। मगर जी जलता है इन

बातों पर। अगर ये बच्चे पहले से साफ़ होते तो इस वक्त नहलाने की जरूरत न पड़ती। मगर मैं तो देख रहा हूँ कि सिर्फ़ हाथ-मुँह धुलाने से काम न चलेगा। हाथ-मुँह का मैल अगर छूट भी गया तो चितकबरे नज़र आयेंगे।

बेगम—ऐ और क्या, चितकबरे नहीं तो गलदुम, मालूम होता है जैसे जानवर के बच्चे।

मसूद—अजी जानवरों से भी बदतर हैं। अब क्यों कहलवाओगी? जानवर भी अपने बच्चों को चाट-चाटकर साफ़ रखते हैं। मगर ये तो मालूम होता है कि जैसे जिन्दगी भर नहाये ही नहीं हैं।

बेगम—नहाये क्यों नहीं? अभी पिछले ही महीने जब मैं नहाई थी तो इनको भी नहलाया था।

मसूद—सुभानअल्लाह, सुभानअल्लाह! क्यों न वो लोग दलद्दर नज़र आयें जिनको एक-एक महीना गुज़र जाये।

बेगम—ऐ तो मुझे क्या मालूम था कि बच्चों को पानी का कीड़ा बनाकर रखा जाता है। मेरा क्या है मैं भी रोज उनको नल के नीचे खड़ा कर दूँगी। मगर अपनी तो खबर लो।

मसूद—मेरा क्या है मैं तो काम-काजी आदमी हूँ, रोज कचहरी। और आराम का एक दिन इतवार का वह भी नहाने-धोने के नज्र कर दूँ तो आखिर आराम किस दिन करूँ? फिर भी किसी-न-किसी तरह नहाता ही रहता हूँ। मगर तुम लोग तो, [दरवाज़े पर दस्तक की आवाज] देखा तुमने वो लोग आ गये।

बेगम—इसीलिए कहती थी कि······[फिर दस्तक]

मसूद—आहिस्ता बोलो! [बुलन्द आवाज़ से] कौन है?

आवाज़—मैं हूँ सलीम।

मसूद—आया भाई अभी आया। [आहिस्ता से] अब ये लड़के यों ही रहे। लाहौल वला क़ूवत!

बेगम—तो फिर मैं क्या करूँ ?

मसूद—हाँ, करूँ तो जो कुछ मैं करूँ ! [दस्तक—'अरे भई खोल भी चुको !']

[मसूद दरवाज़ा खोल देता है । सलीम अपनी बीवी के साथ आता है ।]

सलीम—आदाब बजा लाता हूँ भाभी ।

मसूद—ख़ैर, ख़ैर हो गया आदाब । आओ वह बेचारी भी तुम्हारी वजह से खड़ी हैं । भाभी, तुम तो इधर निकल लाओ ।

नजमा—जी हाँ ! ओहो, ये बावा लोग नल के नीचे खेल रहे हैं । मगर पानी में ज़्यादा खेलना ठीक नहीं ।

सलीम—हाँ मसूद, इनको नल के नीचे से हटाओ जाकर ।

मसूद—बड़ी देर से तुम्हारी भावज से कह रहा हूँ, मगर वह तो गोया हर बात मज़ाक़ समझती हैं ।

नजमा—भावज ? इसका भावज से क्या ताल्लुक़ ? क्या बच्चों को भावज ही ठीक करें तो वो ठीक होंगे ?

सलीम—समझ में नहीं आता । यानी आपने यह काम भावज पर छोड़ रखा है, क्यों हज़रत ?

मसूद—करता तो सब कुछ मैं ही हूँ । मगर तुम ही बताओ यह काम मेरे करने का है, मैं दिन भर मरूँ उसके बाद······।

सलीम—[बात काटकर] मैं यह कहता हूँ कि कचहरी में सिर्फ़ तुम ही तो नहीं मरते, मैं भी आख़िर तुम्हारे साथ हूँ । मगर बच्चों की देखभाल आख़िर करता ही हूँ ।

बेगम—ऐ है बस यही न कहना । इनसे तो अगर ज़रा भी कह दिया जाय कि किसी बच्चे के कपड़े बदलवा दो तो आफ़त मचा दें । क़यामत बर्पा कर दें और सारा घर सर पर उठा लें कि साहब मेरा यह काम नहीं है । मैं दिन भर कचहरी में सर खपाता हूँ, दिमाग़ का काम करता हूँ और क़लम से चक्की पीसता हूँ ।

मसूद—तो क्या ग़लत कहता हूँ ? तुम्हारा मतलब तो यह है कि मैं दिन भर सरकारी काम करूँ और उसके बाद घर पर आऊँ तो ये सब काम भी मेरे ही सर रहें। आदमी न हुआ घनचक्कर हो गया।

सलीम—भाई, यह भी तो सोचो कि आखिर भाभी भी तो कुछ काम करती ही होंगी।

मसूद—क्या काम करती हैं यह ?

बेगम—ऊँ हुहँ, कुछ भी नहीं। मैं तो बस बैठी रहती हूँ और यह घर चल रहा है इन्हीं के दम से।

नजमा—मालूम होता है कि यहाँ अभी तक यही नहीं तै किया गया कि कौनसा काम किसका है और किस काम का ज़िम्मेदार कौन है।

मसूद—सुभान अल्लाह ! यह भी कोई सरकारी महकमा है कि हर शोबे का एक ज़िम्मेदार हो। यह भी कोई तै करने की बात है ? ज़ाहिर है कि मैं दफ़्तर का ज़िम्मेदार हूँ और यह घर की।

सलीम—ठीक है, बिल्कुल ठीक। तुम दफ़्तर के ज़िम्मेदार हुए और यह घर की। मगर ये बच्चे क्या होंगे फिर ?

मसूद—फिर वही बेवक़ूफ़ी की बातें। बच्चे कोई सरकारी थोड़े हैं। घर में ये भी आ गये।

सलीम—क्या ख़ूब ! घर में आ गये, और जो भाभी यह कहें कि जाओ बावर्चीख़ाना दफ़्तर में चला गया तो तुम क्या कहोगे ?

मसूद—क्या मतलब ? [नजमा हँसती है।]

सलीम—भाई, मतलब यह है कि तुम्हारे ख़याल में तुम्हारा काम यह है कि दफ़्तर जाकर महीने भर का ख़र्च मुहैया करो।

मसूद—और क्या, बस मेरा यही काम है जो मैं करता हूँ।

सलीम—और भाभी का काम यह है कि वह तुमको वक़्त पर खाने को दें। सही वक़्त पर नाश्ता तुमको मिल जाये और यह न हो कि कचहरी से आकर तुमको हांडी-चूल्हा करना पड़े।

मसूद—बेशक, यह हर औरत का फ़र्ज़ होना चाहिये।

सलीम—तो बस तुम्हारा दफ़्तर का और इनका हाँडी-चूल्हे का काम बराबर हो गया। न इनका एहसान तुम पर न तुम्हारा इन पर।

मसूद—तो कौन एहसान जता रहा है? तुम अजीब औंधी-सीधी बातें कर रहे हो।

सलीम—मेरा मतलब यह है कि इसके बाद भी बहुत से काम बाक़ी रह गये—मसलन बच्चों की देखभाल।

मसूद—यह इन्हीं का काम है।

सलीम—घर की सफ़ाई और तरतीब में सलीक़ा?

मसूद—यह भी इन्हीं का काम है, मेरा नहीं।

सलीम—बच्चों की तालीमो-तरबियत?

मसूद—यह......यह अलबत्ता......तालीम मेरा काम है और तरबियत इनका।

सलीम—मेहमामों की ख़ातिर-मदारात?

मसूद—मर्दाने में मेरा काम है और ज़नाने में इनका।

सलीम—सीना-पिरोना, धोबी का हिसाब रखना, दूध वाली का हिसाब-किताब?

बेगम—ऐ कहाँ तक गिनवाओगे? सुबह से उठकर शाम तक दम मारने की फ़ुर्सत नहीं मिलती। अपनी यह गत बनाली है कि न ओढ़ने की फ़िक्र न पहनने की। यह बड़ा तीर मारते हैं कि दफ़्तर में छः घण्टे मेज़-कुर्सी पर बैठकर लिख-पढ़ लेते हैं। यहाँ तो चौबीस घण्टे की यही आफ़त है और फिर भी नाम यह है कि साहब हम कुछ करते ही नहीं।

नजमा—मैंने तो सौ बातों की एक बात कह दी ना कि आप लोगों ने अब तक ज़िम्मेदारियाँ तक़सीम ही नहीं की हैं। अच्छा यह बताइये

कि अगर कभी कोई बच्चा बीमार होता है तो तीमारदारी आप में से किसके ज़िम्मे होती है।

मसूद—एक टाँग घर पर होती है और एक अस्पताल में।

बेगम—रात-रात भर कंधे से लगाये टहला करती हूँ। इनको ख़बर भी नहीं होती।

सलीम—तुम ठीक कहती हो बेगम कि घर का कोई बाक़ायदा निज़ाम ही नहीं है। दोनों में से कोई भी किसी काम का ज़िम्मेदार नहीं है। यही वजह है कि ये लोग इस तरह रहते हैं। हम लोग तो एक मिनट भी इस तरह नहीं रह सकते। यह जो बैठने की जगह है किस क़दर गंदी है! साफ़ कपड़े पहनकर बैठो तो गन्दे हो जायें।

मसूद—हालाँकि अभी मैंने इसको साफ़ किया है। यक़ीन जानो चूहेदान तक तो उठाया है। इस मामले में हमारे यहाँ काम ज़रूर तक़सीम हो गया है यानी मैं सफ़ाई का ज़िम्मेदार हूँ और यह कबाड़-खाना फैलाने की। यक़ीन जानो दो मिनट पहले आकर देखते मालूम होता था कि तख़्त क्या है गड़बड़झाला है।

बेगम—और जो मुँह में आये कह लो। यह क्यों नहीं कहते कि तुम्हारे ही लड़के यह गत बनाये हुए हैं घर की।

मसूद—मेरे लड़कों से आपकी भी तो ग़ालिबन कुछ अज़ीज़दारी है।

सलीम—ओहो, यह बहस तो बिल्कुल बेकार है। लड़के किस घर में नहीं होते। इसके मानी तो ये हुए कि जिस घर में बच्चे हों वह कबाड़खाना ही बना रहे? भई हमारे यहाँ भी तो माशाअल्लाह बच्चे हैं मगर यह बात नहीं होने पाती।

नजमा—दूसरे यह कि लड़कों में भी सलीक़ा और तमीज़ पैदा हो जाती है।

मसूद—साहब, यह अपनी-अपनी क़िस्मत है। यहाँ तो एक-से-एक

नामाक़ूल औलाद मौजूद है। वह देखिये अभी तक पानी से बैठे खेल रहे हैं [डाँटकर] अब हटो भी वहाँ से! [किटकिटा कर] ये हमारी औलाद थोड़ी ही है आमाल हैं आमाल! नातिक़ा बन्द है। बाज औक़ात तो जी चाहता है कि कपड़े फाड़कर किसी तरफ़ को निकल जाऊँ।

सलीम—यह क्या बेहूदगी है? मियाँ ये सब बेढंगेपन के करिश्मे हैं। अगर जरा क़ायदे की जिन्दगी बसर करो और अपने घर का एक निजाम बना लो तो कुछ दिन में तुम्हारी हालत ही बदल जावे।

मसूद—बदल चुकी हालत अब क़ब्र में बदलेगी।

नजमा—अच्छा आप कुछ दिन हम लोगों के क़ायदे से घर चलाकर देखें कि क्या होता है।

मसूद—यह इनसे कहो जो इस वक़्त बहुत मासूम बनी हुई बैठी सब सुन रही हैं। औरत घर चलाती है न कि मर्द।

सलीम—यह ग़लत है, सिर्फ़ औरत जिम्मेदार नहीं हो सकती।

बेगम—ख़ुदा तुम्हारा भला करे। यह समझते हैं कि सब जिम्मेदारी मेरी ही है।

सलीम—तुम इसको इस तरह समझो मसूद कि सुबह चाय कौन बनाता है तुम्हारे यहाँ?

मसूद—बनाती तो ख़ैर यही हैं। मगर शायद मेरे दफ़्तर जाने के बाद जब मैं कुछ बचा-खुचा बासी खाकर चला जाता हूँ।

बेगम—ख़ुदा के लिए इतना झूठ तो न बोलो। जब रात गये तक तुम्हारे इन्तेजार में जागना पड़ेगा तो सवेरे आँख कैसे खुल सकती है?

नजमा—रात गये तक इन्तेजार क्या, क्या रात को देर तक बाहर रहते हैं मसूद साहब?

मसूद—दिन भर का थका-हारा अगर रात को दोस्त-अहबाब में ब्रिज खेल लेता हूँ तो वह भी इनको नागवार है, गोया मैं बस इनके लिए हूँ कि कोफ़्त ही में जिन्दगी बसर करूँ।

सलीम—यह तो बुरी बात है कि तुम रात को घर के बाहर रहते हो। दरअसल इसकी वजह भी यही है कि तुम अपनी ज़िम्मेदारी महसूस नहीं करते। वर्ना तुम खुद बाहर न जाओ। मुझे देखो मैं कहीं जाता हूँ।

मसूद—तो जनाबे वाला आप ठहरे फ़रिश्ते और मुझमें तो हज़ार ऐब हैं। सुभान अल्लाह आप भी आये वहाँ से जिम्मेदारी लेकर और मुझ ही को क़ुसूरवार ठहराते।

नजमा—ना, ना ना, क़ुसूर की बात नहीं।

सलीम—भाई क़ुसूर तो तुम्हारा इसलिए नहीं है कि दरअसल तुम दोनों अभी तक घरदारी जानते ही नहीं। घरदारी के सिलसिले में तुम दोनों के दरम्यान दरअसल एक ऐसे समझौते की ज़रूरत है जो हम दोनों मियाँ-बीवी के दरम्यान है। इसके बाद अगर समझौते से तुम दोनों फिरोगे तो अलबत्ता क़ुसूर होगा।

मसूद—समझौता, समझौता तो हो ही नहीं सकता मियाँ सलीम। तुम नहीं जानते कि यह किस क़दर बेढंगी हैं।

सलीम—इनके मुताल्लिक़ तो नहीं जानता, मगर क्या तुमसे भी ज्यादा हैं?

बेगम—बस बेढंगापन मेरा यही है कि इनकी लापरवाइयाँ मुझसे देखी नहीं जातीं और जल-जल के रह जाती हूँ।

सलीम—ख़ैर, ख़ैर। दरअसल तुम यह करो, भाभी आप भी सुनिये कि यह घर आप दोनों का है। बच्चे आप दोनों के और खुद आप दोनों भी एक-दूसरे के हैं। अगर आप एक-दूसरे को आराम पहुँचाने की दिल में ठान लें तो यह झगड़ा ही ख़त्म हो जाय।

मसूद—लाहौल वलाक़ूवत! मियाँ यह मुझको आराम पहुँचा ही नहीं सकतीं तुम कैसी बातें कर रहे हो।

सलीम—सुनो तो सही, आराम पहुँचायेंगी कैसे नहीं। वह नहीं

पहुँचा सकतीं तो तुम पहुँचाओ आराम। फिर देखो कि क्या होता है।" हम दोनों में भी कुछ दिन लड़ाई रही। यह दिन चढ़े सोकर उठने की आदी थीं और मैं तड़के चाय पीने का।

नजमा—ख़ैर उन बातों का यहाँ क्या ज़िक्र है।

सलीम— मैं कोई राज़ नहीं खोल रहा हूँ। मतलब यह कि हम दोनों में समझौता हो गया इन्होंने अलार्म लगाकर सोना शुरू कर दिया और मैंने जरा देर में चाय पीने की आदत डाल ली।

नजमा—फिर वही, मानेंगे नहीं आप। खुद सोकर उठते ही टूट पड़ते हैं चाय पर। हाथ-मुँह धोने तक······।

सलीम—ख़ैर, ख़ैर। यानी मैं वह बात थोड़ी ही कह रहा हूँ। मेरा तो मतलब यह था कि अब यह आठ बजे नहीं बल्कि सात ही बजे या कुछ बाद में।

नजमा—हाँ, मैं तो नींद पूरी करके उठती हूँ और आप भूख से बेताब होकर इस तरह उठते हैं कि······।

सलीम—यह क्या लग़वियत है! मेरा मतलब तो यह है कि यहाँ उठने न उठने का सवाल ही नहीं, चाय मुझको अब जल्दी मिल जाती है। और मैं साढ़े सात बजे ही चाय पी लेता हूँ।

मसूद—फिर वही, अरे मियाँ तुम अपनी न कहो। तुमको बीवी मिली है फ़रिश्ता जो सात बजे सोकर उठती है और साढ़े सात बजे चाय पिला देती है। अब मैं क्या अपनी बदलवाऊँ किसी से।

बेगम—ठीक वक़्त पर सोने को मिले तो मैं सात क्या यानी पाँच ही बजे उठ सकती हूँ।

सलीम—सुनिये तो सही। यहाँ सवाल यह नहीं है बल्कि मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि मैं ख़ुद ही चाय बनाता हूँ।

मसूद—तुम, यानी तुम अपने हाथ से बनाते हो चाय ?

बेगम—हाँ हाँ, कह तो रहे हैं कि वह खुद बनाते हैं चाय। तुम्हारी

तरह थोड़ी कि बावर्चीख़ाने का रास्ता ही याद न होगा। क्या मजाल जो ज़रा-सा पानी भी गरम कर लें।

मसूद—हाँ तो मैं कब कहता हूँ कि मैं यह काम कर सकता हूँ। मैंने तो मर्दों को यह काम करते न देखा न सुना।

सलीम—क्या ख़ूब, यह भी कोई काम में काम हुआ। अँगीठी में आग सुलगाकर चाय का पानी गरम कर लिया कीजिये, क़िस्सा ख़त्म। मैं तो यह कहता हूँ कि तुमको हर काम के लिए तैयार रहना चाहिये। हाँ, तो पहले मैं चाय बनाकर इनको उठा दिया करता हूँ। और जब तक यह मुँह-हाथ धोकर फ़ारिग़ हों मैं बच्चों को चाय पिलाकर छुट्टी कर लेता हूँ।

बेगम—बच्चों को भी आप ही चाय पिलाते हैं?

सलीम—क्यों क्या हुआ? मैं तो बच्चों के हाथ-मुँह तक अपने सामने धुलवाता हूँ।

मसूद—यानी तुम?

बेगम—और नहीं तो क्या तुम?

मसूद—हाँ तो क्या बाप होकर बच्चों के हाथ-मुँह धुलवाते हो, और मा के होते हुए?

सलीम—इसमें मा और बाप का क्या सवाल है भई, औलाद दोनों की······।

मसूद—मगर तुम मर्द हो भाई।

सलीम—तो क्या हुआ? क्या मर्दों के लिए बच्चों की देखभाल मना है?

मसूद—ख़ूब साहब, ख़ूब! तो आप हाथ-मुँह धुलवाते हैं बच्चों का?

सलीम—उसके बाद उनको चाय पिलाकर छुट्टी कर लेता हूँ, और फिर हम दोनों इत्मिनान से पीते हैं चाय।

मसूद—यहाँ तो यह मार पड़ी रहती है कि बच्चे उठ बैठते हैं तो मुँह कौन धुलाये। और मुँह धुल गया है तो चाय कौन पिलाये। तो गोया बीवी का कोई काम नहीं सिवाय पड़े-पड़े एँठने के ?

सलीम—नहीं, काम क्यों नहीं। मैं चाय से फ़ारिग़ होकर दफ़्तर के काम में लग जाता हूँ और यह मेरे लिए खाना तैयार करती हैं।

नजमा—और बच्चों का सबक़ भी सुनती हूँ। फिर यह आकर बच्चों को कपड़े पहनाते हैं और मैं सबके लिए खाना लगा देती हूँ।

सलीम—हम सब खाने से फ़ारिग़ होकर अपने-अपने काम में लग जाते हैं। बच्चे स्कूल चले जाते हैं मैं दफ़्तर जाता हूँ और यह घर की सफ़ाई, सीना, पिरोना और दूसरे कामों में मसरूफ़ हो जाती हैं।

मसूद—सुन रहीं है जनाब ?

बेगम—मैं क्या सुनूं ? तुम भी तो सुनो कि वह मर्द होकर क्या-क्या करते हैं।

सलीम—अब जिस वक़्त मैं दफ़्तर से आता हूँ तो सहन में छोटी-सी मेज़ पर इनको और बच्चों को चाय के लिए अपना मुन्तज़िर पाता हूँ।

मसूद—यह चाय भी तुम ही बनाते हो ?

सलीम—नहीं यह ख़ुद ही बनाती हैं। और कुछ हल्का-सा नाश्ता भी तैयार करती हैं। हम सब चाय पीते हैं, उसके बाद बच्चे खेल-कूद में लग जाते हैं। मैं थोड़ी देर आराम कुर्सी पर लेट कर सिगरेट पीता हूँ और ये मेरे क़रीब बैठकर दिलचस्प बातें करती हैं—ऐसी बातें जिनसे मेरे दिमाग़ का बोझ हल्का हो जाता है।

मसूद—यानी बीवी की बातों से आपके दिमाग़ का बोझ हल्का हो जाता है, चे ख़ुश !

सलीम—क्या तुम्हारे नज़दीक न होना चाहिये ?

मसूद—दर्दे-सर मोल लेने के लिए तो ख़ैर बीवी से बातें करना ही

पड़ती हैं। लेकिन दिमाग़ का बोझ हल्का करने के लिए आप ही से यह बात सुनी हैं।

नजमा—[हँसकर] कैसे मियाँ-बीवी हैं आप लोग ! हम लोग तो इस तरह से एक दिन भी ज़िन्दा नहीं रह सकते।

मसूद—तो ज़िन्दा ही कब हैं, बस यह कहो कि ज़िन्दों में शुमार ज़रूर हैं।

सलीम—इसकी वजह यह है कि तुमको ज़िन्दा रहना नहीं आता। हम दोनों अपनी ज़िन्दगी से मुतमइन हैं। हमारा घर जन्नत है। इनको हर वक़्त फ़िक्र रहती है कि मैं कैसे ख़ुश रहूँ।

मसूद—बस यही मेरी क़िस्मत में नहीं।

नजमा—और यह हर वक़्त मुझको ख़ुश देखना चाहते हैं।

बेगम—मेरे ऐसे कहाँ हैं मुक़द्दर !

सलीम—आप दोनों एक-दूसरे को ख़ुश रख सकते हैं। मैं हमेशा अपने कपड़ों की तरफ़ से बेफ़िक्र रहता हूँ। इसलिए कि इन बातों की ख़ुद इनको फ़िक्र रहती है और मुझको हर चीज़ तैयार मिलती है।

मसूद—और एक मैं हूँ।

नजमा—मुझको भी तो आज तक यह कहने की ज़रूरत नहीं पड़ती कि पावडर ख़त्म हो गया है या क्रीम और स्नो नहीं हैं।

बेगम—आठ दिन से रूखे बाल लिये फिर रही हूँ। अब ख़ुद ही घर से निकल के जाऊँ तो तेल आये।

सलीम—तौबा, तौबा, तौबा ! यह बड़ी बुरी बात है। मैं तो यह जानता हूँ कि मुझको जो ये साफ़ कपड़े ढंग से पहनने को मिल जाते हैं वह सब इन्हीं का हुस्ने-इन्तेज़ाम है।

नजमा—और मैं यह जानती हूँ कि अगर यह मेरा इतना ख़याल न रखें तो मेरी भी यही हालत हो जो बेगम मसूद तुम्हारी है।

मसूद—यह तो ख़ैर सब कुछ हो सकता है। मैं सब कुछ कर लूंगा। मगर मुझको इनका और अपना दोनों का ख़याल रखना होगा। बग़ैर इसके काम नहीं चल सकता।

बेगम—और अगर मैंने अपना ख़याल रखना छोड़ा तो ख़ुदा जाने मेरी क्या गत बन जायगी।

सलीम—नहीं, नहीं। आप दोनों एक-दूसरे पर भरोसा कीजिये।

मसूद—तो भरोसा मैं कब नहीं करता। मगर भरोसा करने से होता क्या है। अब तुम ही देखो कि मैंने भरोसा किया था कि तुम दोनों आये हो, यह कम-से-कम चाय तो ज़रूर पिलायेंगी मगर वहाँ चाय को छोड़कर पान तक ग़ायब हैं।

बेगम—चाय का मुझे खुद ख़याल आया था मगर क्या मैं सबके सामने यह कहती कि घर में न चाय है न दूध।

मसूद—तो यह किसका बेढंगापन है ?

बेगम—उसी का बढंगापन है जो न चाय लाये न दूध। दोनों चीजें बाज़ार की हैं और मैं घर की बैठने वाली।

सलीम—ख़ैर, आज का ज़िक्र तो छोड़िये। आज तक तो कोई इन्तेज़ाम ही न था मगर अब घर का निज़ाम बना लीजिये।

मसूद—मैं अभी चाय और दूध लाता हूँ। यह कौनसी बात है।

बेगम—तो मुझे करना ही क्या है, मैं भी चाय बना दूँगी। मगर इन लड़कों को क्या किया जाय जो भीगे हुए खड़े हैं।

मसूद—अरे हाँ, लाहौल वला-क़ूवत। साहब यह लड़कों का मामला टेढ़ा है। हम लोग एक-दूसरे के लिए तो समझौता कर सकते हैं मगर इन लड़कों को तो न मैं ठीक कर सकता हूँ और न यह। मुझे छुट्टी नहीं और इनके बस का यह रोग नहीं।

बेगम—तुम जाओ, मैं ठीक किये देती हूँ।

मसूद—तुम क्या ठीक करोगी, मैं ही ठीक करूँगा इनको। मगर दफ़्तर से छुट्टी लेनी पड़ेगी। बहुत कुछ ठीक करना है। सिर्फ़ लड़कों ही को नहीं अपने को भी और आपको भी।

बेगम—लो और सुनो, यह मुझे भी ठीक करेंगे।

सलीम—ठीक है, ठीक है। बहरहाल समझौते की एक सूरत तो पैदा हुई।

[सब हँसते हैं।]